P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-11* July- 2019
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

प्रागैतिहासिक से समकालीन काल तक मृण्मय फलक का स्वरूप

वर्षा बंसल
शोधार्थिनी,
चित्रकला विभाग,
दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट,
दयालबाग, आगरा

सारांश

आदिकाल का आदिमानव रेखाओं के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त करने की कला जानता था। इनके द्वारा अंकित ऐसे ही चित्र प्रागैतिहासिक कला के नाम से जाने जाते हैं। मिस्र तथा मेसोपोटामिया से प्राप्त मृदभाण्ड, मृण्मय फलक व मृण मूर्तियाँ प्रारम्भिक उदाहरण माने जाते हैं।

टेराकोटा अर्थात् मृण्मय कला के रूप में 7वीं शताब्दी ई. पूर्व में प्राचीन यूनान तथा रोमन साम्राज्य के दौरान प्रचलित थी। भारत में भी मृण्मय पात्रों, वस्तुओं तथा फलकों की एक लम्बी सूची हमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों हड़प्पा तथा ताम्र पाषाणकाल से प्राप्त होती है। आज वर्तमान समय में भी ऐसे अनेक स्थान हैं जहां पर मृण्मय से निर्मित फलक, पात्र, वस्तुयें आदि देखने को मिलते हैं जिसमें राजस्थान के निकट मोलेला गाँव का भी नाम प्रसिद्ध है। हड़प्पा के उपरांत मृण्मय वस्तुयें अधिक संख्या में गंगा घाटी स्थलों से प्राप्त होती है। सुंग काल की महत्वपूर्ण खोज मृण्मय फलक थे। सुंग काल के उपरांत कुषाणकाल में निर्मित फलकों में सुंग की तुलना में कम उत्कृष्टता पाई गई है। गुप्त शैली में निर्मित लघु मृण मूर्तियाँ तथा मृत्तिका फलक भारत के विस्तृत क्षेत्रों में पाये गये हैं। बंगाल में मृण्मय कला की उच्च उपस्थिति हमें ताम्रपाषाण युग से शुरू होकर उत्तर गुप्त काल तक देखने को मिलती है। इसी क्रम में मृण्मय फलक बंगाल के बांकुड़ा क्षेत्र में प्राचीन समय से लेकर अब तक बनाये जा रहे हैं, वहीं भारत के पश्चिमी भाग में मृण्मय का विकसित रूप मोलेला में भी देख सकते हैं जो कि प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

मुख्य शब्द : मृण्मय, फलक, मोलेला, मूर्तियाँ, मृदभाण्ड।

प्रस्तावना

आदिमानव ने अपने भावाभिव्यक्ति के लिए भित्ति का सहारा लिया तो कुम्हारों ने अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के लिये मिट्टी को अपना माध्यम बनाया। इस माध्यम में बने कच्चे मिट्टी के पात्रों को सूखने के बाद एवं आग में पकाने के उपरांत ''मृण्मय कला'' के नाम से जाना जाता है जो कि पकने पर गेरूआ रंग में परिवर्तित हो जाती है। मृण्मय कला (टेराकोटा) मानवीय कलाओं में सबसे प्राचीन है। संभवतः इस कला के क्रमबद्ध विकास रहस्यमय है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन मिस्रवासी ही ऐसे लोग थे जिन्होंने मिट्टी का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। मिस्र की सभ्यता में मिट्टी के पात्रों का विवरण 5,000 ई.पूर्व से ज्ञात होता है। तत्पश्चात् इसी क्रम में भारत में मध्यपाषाणकाल, नवपाषाणकाल, सिंधु सभ्यता, मौर्यकाल, गुप्तकाल आदि हुये जिनमें मृण्मय कला (टेराकोटा) का क्रमबद्ध विकास हमें ज्ञात होता है। उत्तरोत्तर विकास होने के साथ मृण्मय अर्थात् मिट्टी से बनी मूर्तियाँ गुप्तकाल में भी देखने को मिलती है। भारत में मृण्मय से बने मंदिरों की संख्या कम ही ज्ञात है, जिसमें चौथी शताब्दी में बना कानपुर के पास भीतरगाँव का मंदिर उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें कला के शास्त्रीय नियमों पर आधारित फलक (प्लेक्स) का मंदिर में निर्माण किया गया था। इसके उपरांत 12वीं–15वीं शताब्दी में बंगाल में भी हमें प्लेक्स का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। आज आधुनिक युग में प्लेक्स का विकसित स्वरूप हमें मोलेला गाँव में देखने को मिलता है जिसमें प्लेक्स का निर्माण लोक परम्परा पर आधारित किया गया है तथा समकालीन समय में भी भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में मिट्टी के बने पात्रों का सृजन कुम्हार समुदाय के लोग सृजित कर रहे हैं। कुम्हार हिन्दू समाज की कर्मठ जातियों में से एक हैं।

भारतवर्ष में पकी हुई मिट्टी की वस्तुयें विभिन्न रूपों में बहुत ही प्राचीनकाल से प्रयुक्त होती आयी हैं। वेदों के स्त्रोत में भी हमें मृण्मय कला का उल्लेख मिलता है। मिट्टी के कार्य को वैदिक काल में प्राप्त ग्रंथों में ''शिल्पकर्म'' के नाम से जाना जाता था जो कि समकालीन समय की अपेक्षा विकृत आकार के होते थे जिसे लोक कला में गिना जाता है। इसका सबसे

अच्छा उदाहरण मौर्यकालीन यक्ष–यक्षिणी की मिट्टी की बनी लोक शिल्प है। वर्तमान में हमें मृण्मय का नया रूप राजस्थान के मोलेला नामक स्थान पर देखने को मिलता है। मृण्मय ऐसी मिट्टी है जो कि 14वीं शताब्दी तक पाष्चात्य और कोलम्बियन लोगों द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। प्रारम्भ में मृण्मय से निर्मित मूर्तियों, वस्तुओं आदि को धूप में सुखाया जाता था फिर उसके बाद से अंगीठी की राख द्वारा सुखाकर पकाया जाने लगा तथा विकसित समय के साथ मृण्मय को भट्टीयों में पकाया जाने लगा।

अध्ययन का उद्देश्य

1. मृण्मय कला के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डाला जायेगा।
2. इसके साथ ही मृण्मय कला के आधुनिक स्वरूप को भी प्रस्तुत किया जायेगा जिससे वर्तमान पीढ़ी इस मृण्मय के नए स्वरूप से अवगत होगी।
3. प्रागैतिहासिक में मृण्मय फलक के स्वरूप से अवगत कराना भी मेरा उद्देश्य रहेगा।

साहित्यावलोकन

साहित्यावलोकन शोध के विषय और क्षेत्र से संदर्भित होता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि अनुसंधानकर्ता को अपने विषय से संबंधित प्रकाशित साहित्य का कितना ज्ञान है। मैंने अपने शोध पत्र को तर्कपूर्ण तथा महत्वपूर्ण बनाने के लिए कुछ साहित्यों का अध्ययन किया जैसे ''श्री हीरेन्द्रनाथ बोस'' के द्वारा प्रकाशित ''मृत्तिका उद्योग'' जिसके अंतर्गत मैंने मिट्टी की उत्पत्ति से संबंधित ज्ञान को प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त मैंने ''राय गोविन्द चन्द'' द्वारा लिखित ''प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन'' नामक पुस्तक से प्राचीन समय में मिट्टी के स्वरूप का अध्ययन प्राप्त किया। साथ ही मैंने ''Indian Handicrafts'', ''Sankar Prosad Ghosh'' द्वारा लिखित ''Terracotta of Bengal (with special reference to Nadia)'', ''Terracotta Art in Northern India'', ''मिट्टी व कुट्टी का काम'', ''प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति'' आदि पुस्तकों का अध्ययन किया।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन की मुख्य विशेषता यह भी होती है कि हम इसके अंतर्गत प्रचलित साहित्यों का अध्ययन तो करते ही हैं साथ ही उन साहित्यों का विश्लेषण भी करते हैं। मैंने राय गोविन्द चन्द की प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन नामक पुस्तक में भारत के प्राचीन काल की मृण्मय कला का तो अध्ययन किया ही जिसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, दैनिक उपयोग में आने वाले पात्रों आदि का उल्लेख किया गया है परन्तु मैं अपने शोध पत्र में प्लेक्स के आधुनिक स्वरूप का वर्णन भी प्रस्तुत करूँगी जो कि मेरे शोध पत्र की मौलिक विशेषता होगी।

मिट्टी प्राचीनकाल से ही कला का सबसे लोकप्रिय माध्यम है। वेदों के स्त्रोत में भी हमें मृण्मय कला का उल्लेख मिलता है। मिट्टी के कार्य को वैदिक काल से प्राप्त ग्रंथों में ''शिल्पकर्म'' के नाम से जाना जाता था जो कि समकालीन समय की अपेक्षा विकृत आकार के होते थे जिसे लोक कला में गिना जाता है। मिट्टी की गहरी उपलब्धता तथा आसानी से आकार या रूप प्रदान करना आदि ने मिट्टी को ''कला'' का एक व्यापक माध्यम बना दिया है। मिट्टी से निर्मित वस्तुयें मुलायम होने के कारण तथा इन वस्तुओं को अधिक टिकाऊ बनाने हेतु लोगों ने इन्हें भट्टीयों में पकाने का अविष्कार किया।

Fig.1. the Burney Relief from Mesopotamia, British Museum, London

''टेराकोटा'' शब्द का शाब्दिक अर्थ ''पकी हुई मिट्टी'' से है। हमारे देश में लगभग प्रत्येक गाँव में कम से कम एक कुम्भकार परिवार अवश्य होता है। इन कुम्भकारों का जीवन स्तर व इनकी उत्पादन क्षमता अलग–अलग होती है। इनके द्वारा तैयार किये गये उत्पादों को ''मिट्टी के बर्तन'' के नाम से जाना जाता है जो स्थानीय तौर पर उपलब्ध लचीली मिट्टी से बनाये जाते हैं। इस लचीली मिट्टी से निर्मित पात्रों तथा वस्तुओं को सर्वप्रथम धूप में सुखाया जाता है तत्पश्चात् भट्टीयों में 750–800°c के तापमान पर पकाया जाता है। पकाने के उपरान्त यह मृण पात्र तथा वस्तुयें लाल भूरे रंग में परिवर्तित हो जाती हैं जो कि टेराकोटा के नाम से जानी जाती है जिसकी प्रकृति अत्यधिक कठोर, सुरागदार तथा टिकाऊ होती है। टेराकोटा (मृण्मय) अर्थात् पकी हुई मिट्टी से निर्मित ये पात्र तथा वस्तुयें मानव की रचनात्मक आवश्यकता के साथ–साथ दैनिक तथा सौंदर्यात्मक जरूरतों की पूर्ति करने में भी सहायक होते हैं।

आदिकाल का आदिमानव रेखाओं के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त करने की कला जानता था। इनके द्वारा अंकित ऐसे ही चित्र प्रागैतिहासिक कला के नाम से जाने जाते हैं। हिन्दी का प्रागेतिहास अंग्रेजी के चतमीपेजवतल का शाब्दिक अनुवाद है जिसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1851 में ''डेनियल विल्सन'' ने अपनी पुस्तक ''दी आर्कयोलोजी एण्ड प्रीहिस्टारिक एनाल्स ऑफ स्कॉटलैण्ड'' में किया। इस शब्द का प्रयोग इतिहास काल से पूर्व उस आदिकाल के लिए किया गया जब मानव सभ्य होने की प्रक्रिया से गुजर रहा था।[1] मृण पात्रों तथा वस्तुओं का निर्माण मानव द्वारा प्राचीन काल से ही दैनिक उपयोग, धार्मिक उपयोग, सौंदर्यात्मक वस्तुओं तथा मूर्तियों आदि के रूप में होता आ रहा है। मिस्र तथा मेसोपोटामिया से प्राप्त मृदभाण्ड, मृण्मय फलक व मृण मूर्तियाँ प्रारम्भिक उदाहरण माने जाते हैं जिसमें मेसोपोटामिया से प्राप्त एक मृण्मय फलक The Burney

Relief है जो कि सन् 1950ई. पूर्व का है जिसको कि Queen of the Night के नाम से भी जाना जाता है। उच्च उत्कीर्ण प्रक्रिया में बना है जो कि ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में सुरक्षित है। इस मृण्मय फलक में नग्न देवी को चिड़िया के पंख के साथ उत्कीर्ण किया है जो कि दो शेरों के ऊपर सवार हैं तथा यह दोनों तरफ से उल्लू से घिरी हुई हैं। टेराकोटा अर्थात् मृण्मय कला के रूप में 7वीं शताब्दी ई. पूर्व में प्राचीन यूनान तथा रोमन साम्राज्य के दौरान प्रचलित थी। भारत में भी मृण्मय पात्रों, वस्तुओं तथा फलकों की एक लम्बी सूची हमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों हड़प्पा तथा ताम्र पाषाणकाल से प्राप्त होती है। आज वर्तमान समय में भी ऐसे अनेक स्थान हैं जहां पर मृण्मय से निर्मित फलक, पात्र, वस्तुयें आदि देखने को मिलते हैं जिसमें राजस्थान के निकट मोलेला गाँव का भी नाम प्रसिद्ध है। पारम्परिक मृण्मय कला हड़प्पा संस्कृति से चलती आ रही है जो कि 2700 से 1750 ई. पूर्व में अधिक विकसित हुई। अनेकों मानव तथा पशु आकृतियाँ हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हूदड़ो, लोथल, कालीबंगन, बनावली आदि स्थलों से खोजे गये। सबसे अधिक मृण्मय शिल्प हड़प्पा काल में विकसित हुए।[2]

Fig.2. Plaque depicting the Circus Scene from Rajghat in Sunga period, 2nd-1st Cent.B.C.

हड़प्पा के उपरांत मृण्मय वस्तुयें अधिक संख्या में गंगा घाटी स्थलों से प्राप्त होती है जिसके प्रमुख केन्द्र मथुरा, अहीछत्र, कौशाम्बी, राजघाट, घोसी, पाटलीपुत्र, श्रावस्ती आदि हैं। सुंग काल की महत्वपूर्ण खोज मृण्मय फलक थे। ये फलक एकल सांचे से निर्मित किये जाते थे जिसके ऊपर लटकाने के लिए छिद्र बने होते थे। इन फलकों पर मुख्यतः नारी तथा धार्मिक आकृतियों को निर्मित किया जाता था। सुंग काल के सबसे सामान्य फलक ''मिथुना'' तथा ''कामुक युगल'' के हैं। मिथुना को कामुक युगल के जोड़े में चित्रित किया गया है जो कि शाश्वत प्रेम व प्रजनन क्षमता को प्रदर्शित करते हैं। इन फलक के किनारे बेल–बूटों से सुसज्जित किये गये हैं। कुछ मिथक दृश्यों पर भी आधारित फलकों को बनाया गया है जैसे Man holding a peacock, Scenes of spring festival, Picnic आदि जो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह कहना गलत होगा कि सुंग काल में केवल एकल सांचे से ही मूर्तियाँ व फलक निर्मित किये जाते थे जबकि इस काल में कलाकारों द्वारा एक नयी प्रथा शुरू की गयी जिसके अंतर्गत दो विभिन्न सांचों को मिट्टी की मोटी सतह के अग्रभाग तथा पिछले भाग पर दबाया जाता था जिसके कारण से आकृतियों का स्वरूप चपटा होता था। इसका प्रमुख उदाहरण भीटा से प्राप्त मृण्मय फलक Dushyanta meeting shakuntala तथा मथुरा से प्राप्त फलक lady holding lila-kamala आदि हैं।

इस काल के कलाकार फलक के अग्रभाग पर निर्मित आकृतियों की सुन्दरता पर अधिक ध्यान देते थे तथा पृष्ठ भाग को लापरवाह उंगलियों के निशान के साथ सतह को असमान छोड़ देते थे जिसके उदाहरण राजघाट से प्राप्त फलक The circus scene जो कि इस समय भारत कला भवन, बनारस के संग्रह में है तथा कौशाम्बी से प्राप्त फलक The bedroom scene आदि हैं।

अब उभार की दृष्टि से सुंग काल में दो प्रकार से मृण्मय फलकों पर आकृतियों का निर्माण किया जाने लगा। प्रथम प्रकार में चपटी सतह पर कठोर रेखाओं के संयोजन से भारी आकृतियां जो कि भरहूत तथा सांची स्तूप संख्या–2 की पत्थर की मूर्तियों के समान प्रतीत होती हैं तथा द्वितीय प्रकार में फलकों पर निर्मित आकृतियाँ पहले प्रकार की तुलना में भिन्न होती थीं। इसके अंतर्गत आकृतियों को अधिक उभार के साथ गहराई दिखाते हुए निर्मित किया गया है जो कि अधिक उत्कृष्ट, अनुशासित रेखाओं से उकेरी गई है जो कि सांची स्तूप संख्या–1 की मूर्तियों के समान प्रतीत होती हैं।

Fig.3. Plaque depicting the bedroom scene from Kaushambi in Sunga period, 2nd-1st Cent.B.C.

सुंग काल के उपरांत कुषाणकाल में निर्मित फलकों में सुंग की तुलना में कम उत्कृष्टता पाई गई है जिसके प्रमाण हमें मथुरा से प्राप्त फलक The Kamdeva, Mother and child तथा अहीछत्र से प्राप्त फलक के रूप में देखने को मिलते हैं। सुंग काल में पूरी तरह से सांचे से निर्मित आकृतियों को फलक पर निर्मित किया जाता था जबकि कुषाणकाल के कलाकार केवल इसी तकनीक पर आधारित नहीं थे।

Fig.4. A figure on a flat surface with hard lines in Sunga period, 2nd-1st Cent.B.C.

Fig. 5 & 6 A high relief figures similar to sanchi stupa no. 1, Sunga period

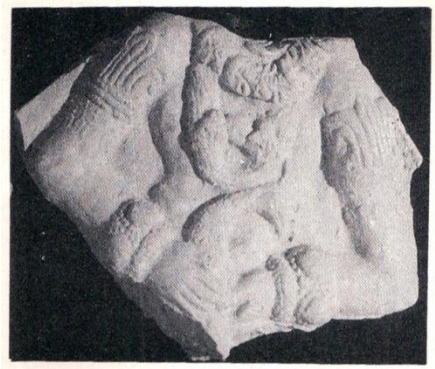

एकल सांचे से निर्मित फलकों के अतिरिक्त कुषाणकाल में कलाकारों ने द्वि सांचे तथा हाथ से निर्मित आकृतियों को भी फलकों पर उकेरा। इस काल के कलाकारों ने चपटेपन के स्थान पर आकृतियों में गोलाई दिखाने का सफल प्रयास किया। जिसका मुख्य उदाहरण मथुरा से प्राप्त फलकों The salabhanjika, Mother and child तथा The kamdeva आदि हैं। इस काल में कलाकारों ने अंदर से खोखली आकृतियों को भी फलकों पर निर्मित किया। उभार की दृष्टि से कुषाणकाल में निर्मित फलक सुंग काल की तुलना में अधिक उत्कृष्ट थे। तत्पश्चात् गुप्तकाल में मृण मूर्तिकला, तकनीकी और सौंदर्य दोनों ही दृष्टियों से अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई।[3] स्तूप या मंदिर पर लगने वाले फलकों या बड़ी आकृतियों को सांचे और हाथ के सम्मिलित सहयोग से रूप प्रदान किया गया। गुप्त शैली में निर्मित लघु मृण मूर्तियाँ तथा मृत्तिका फलक भारत के विस्तृत क्षेत्रों में पाये गये हैं (दक्षिण भारत को छोड़कर)।[4] इनमें उल्लेखनीय हैं–पटना और सहेत–महेत के रामायण फलक, भीतरगाँव की ब्राह्मण धर्म विषयक उद्भुत आकृतियां, महास्थान और बागढ़ (बंगाल) के वर्तुलाकार और बड़े आकार के फलक दृश्य, अहीछत्र के फलक आदि। इन फलकों पर आकृतियों में सौंदर्य का पक्ष दिखाने हेतु गुप्त कलाकार इस बात से पूरी तरह परिचित थे कि मिट्टी का गुण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। V.S. Agarwal कहते हैं–"The structural temple became a regular feature of the popular artistic movement which gave rise to the perfection of the image on the one hand and to the full development of the decorative motif and symbols on the other."[5] गुप्तकाल में मंदिरों पर निर्मित फलक जिनके विषय रामायण पर आधारित होते थे केवल भारत तक ही सीमित नहीं थे। ए.के. कुमारस्वामी कहते हैं–''Pannels of Ramayana stories in java were fixed in the basement of the temples."[6]

Fig.7. Plaque depicting The fight between sugriva and virupaksha from Sahet-Mahet in Gupta period

Fig.8. A bejewelled female divinity with five auspicious hairpins, 2nd century BCE in Bengal known as Yakshi

Fig.9. A hand modelled male head with curly hair 4th to 6th century CE, Dhosa

Fig.10. A hand modelled wheeled horse, 2nd century BCE to 1st Century

Fig.11. The Bankura Horse has became the Logo of Cottage Industry

Central Cottage Industries Emporium
CENTRAL COTTAGE INDUSTRIES CORPORATION OF INDIA LTD.
(A GOVT. OF INDIA UNDERTAKING. MINISTRY OF TEXTILES)
JAWAHAR VYAPAR BHAWAN, JANPATH, NEW DELHI -110001
MUMBAI | BENGALURU | CHENNAI | KOLKATA | HYDERABAD | PATNA

COTTAGE

गुप्तकाल में कुछ कथात्मक फलकों को भी मंदिरों की भित्तियों पर निर्मित किया गया जिसके मुख्य दो उद्देश्य थे– एक वास्तुशिल्प माध्यम के रूप में तथा दूसरा लोगों को देवी–देवताओं से संबंधित कथा से अवगत कराना था। इस प्रकार के कथात्मक फलकों का निर्माण सहेत–महेत, भीतरगाँव, कुशीनगर, अहीछत्र आदि मंदिरों में हुआ जिसमें कि राम, शिव, बुद्ध, कृष्ण आदि से संबंधित दृश्यों का अंकन किया गया। कुछ महत्वपूर्ण मृण्मय फलकों में सहेत–महेत मंदिर में निर्मित The fight between sugriva and virupaksa, अहीछत्र का महाभारत दृश्य, भीतरगाँव के रामायण दृश्य आदि उल्लेखनीय हैं जिसमें कि सम्पूर्ण कथा को मुख्य आकृति के अभाव में ही निर्मित किया गया है। मुख्य आकृति को कथात्मक फलकों में बार–बार दिखाना गुप्त काल के कलाकारों के लिये इतना जरूरी नहीं था जिसका मुख्य कारण धार्मिक कथाओं का लोकप्रिय होना था। जिसके आधार पर सम्पूर्ण दृश्यों को आसानी से समझा जा सकता था। बंगाल में प्राचीन खुदाई स्थलों में बांगढ़, वीरभानपुर, चंद्रकेतुगढ़, तमलुक, बलाल, ढीपी राजबरीदंगा, भरतपुर, मंगलकोट, दीहार आदि प्रमुख हैं। बंगाल में मृण्मय कला की उच्च उपस्थिति हमें ताम्रपाषाण युग से शुरू होकर उत्तर गुप्ता काल तक देखने को मिलती है। प्राचीन समय में जब अन्य स्थानों पर इस कला का अभाव था तब यहाँ बंगाल क्षेत्र में हमें अनेकों ईंटों से निर्मित मंदिर प्राप्त होते हैं जिनमें मृण्मय फलकों का प्रयोग किया गया था। बंगाल में आसानी से समुद्र के किनारे मिट्टी की उपलब्धता ही इस काल में मृण्मय कला का प्रमुख कारण माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त एक और कारण यह भी हो सकता है कि मिट्टी का आसानी से किसी भी रूप को धारण कर लेना तथा बंगाल में पत्थर की कमी होना। बंगाल में 1 से 2 शताब्दी ई पूर्व से लेकर 19वीं शताब्दी तक मृण्मय कला के अनेकों उदाहरण गोल आकार में बनी मूर्तियां तथा फलकों से प्राप्त होते हैं। मृण मूर्तियों में मानव आकृतियां जिसमें कि स्त्री तथा पुरूष दोनों को ही बनाया जाता था। इसके साथ ही पशु आकृतियों को भी प्रमुखता से बनाया जाता था। स्त्री आकृतियों में मुख्यतः Mother goddess, Mother, Mother and child आदि को बनाते थे। इसके अतिरिक्त अनेक संख्या में फलकों का भी निर्माण किया जाता था और ये फलक सांचे से निर्मित होने के कारण से इनका उत्पादन भी अधिक संख्या में होता था।[7] पूर्वी भारत में स्थित बंगाल प्रदेश अपने सांस्कृतिक एवं कलात्मक परिवेश के कारण भारत में तथा भारत के बाहर भी जाना जाता है। प्राचीन समय से लेकर मध्य काल में होते हुए आधुनिक समय और समकालीन कलात्मक परिवेश तक यहाँ के कलाकार अपनी सृजनात्मक प्रवृत्ति को मृण्मय फलक, मूर्तिशिल्प, चित्रकला और वास्तुकला के माध्यम से दर्शक के सामने प्रस्तुत करते आये हैं।

इसी क्रम में मृण्मय फलक बंगाल के बांकुड़ा क्षेत्र में प्राचीन समय से लेकर अब तक बनाये जा रहे हैं। बंगाल के अनंतपुर, विष्णुपुर तथा नादिया आदि स्थानों के मंदिरों में भी हमें प्लेक्स अर्थात् फलकों का निर्माण मंदिरों की भित्तियों पर देखने को मिलता है।[8] ये फलक अत्यंत परिष्कृत रूप में बने हैं तथा रामायण, महाभारत आदि मिथ कथाओं पर आधारित होते थे जबकि मोलेला में 800 वर्ष पूर्व से फलक हाथ से ही बिना किसी सांचे की सहायता के निर्मित किये जा रहे हैं जो कि अंदर से खोखले होते

हैं तथा लोक कला पर आधारित इन फलकों का निर्माण मोलेला के शिल्पकारों द्वारा प्रचुरता से किया जा रहा है। बंगाल मृण्मय कला का विकसित रूप प्राचीन बांकुड़ा की लोक कला से प्रभावित मृण्मय वस्तुओं में दिखाई देता है जिसमें कि शिल्पकारों ने अत्यधिक अमूर्त रूप को प्रस्तुमत किया है। बांकुड़ा के कलाकार स्थानीय मिट्टी का प्रयोग कर मृण्मय में घोड़े एवं मिथ कथाओं पर आधारित वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में निर्माण कर रहे हैं। बाकुड़ा के घोड़े की प्रसिद्धि इस बात से पता की जा सकती है कि इसे Cottage industry का logo तक स्वीकार कर लिया गया है। यह सवहव मृण्मय के उच्च विकासक्रम को तो दर्शाता ही है तथा साथ ही बाकुड़ा की मृण्मय कला में विकसित स्थिति को भी पूर्ण रूप से व्यक्त करने में सक्षम है। वहीं भारत के पश्चिमी भाग में मृण्मय का विकसित रूप मोलेला में भी देख सकते हैं जो कि इस समय प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

भारतवर्ष में कुम्हार को शिल्पकार और उसके द्वारा बनाई गयी कला को शिल्प कहा जाता है। शिल्प का अर्थ हस्त निर्मित कला से है जो कि कुम्हारों द्वारा निर्मित की जाती है। इस हस्त निर्मित कला का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है जिसमें औरंगाबाद, निजामाबाद, चुनार, खुर्जा, इलाहाबाद के फुलपुर, राजस्थान के मोलेला आदि की मृण्मय कला अपना अग्रणी स्थान रखती हैं। आज वर्तमान समय में इन मृण्मय फलकों का प्रयोग भवन सज्जा हेतु भी किया जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण राजस्थान में नाथद्वारा से 10 किलोमीटर आगे स्थित मोलेला गाँव है जहां कुम्भकार और कलाकार गहरी लाल मिट्टी से लोक कला की विशेषता लिये हुए पौराणिक व सामाजिक विषयों पर आधारित मृण फलकों का निर्माण कर रहे हैं।

निष्कर्ष

मोलेला की मृण्मय कला अन्य मृण्मय कलाओं से बिल्कुल अलग है जो कि आधुनिक युग में भी अपना अस्तित्व बनाये हुए है। इसकी कलात्मकता अन्य मृण्मय कलाओं से भिन्न है जिसके अंतर्गत मृण्मय से निर्मित प्लेक्स का मुख्य रूप से निर्माण किया जाता है जो कि अंदर से खोखले होते हैं जिनको प्राचीन समय में जनजातियां अपनी धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा पूजा अराधना के लिए खरीदने मोलेला आते थे परन्तु वर्तमान समय में इन मृण्मय प्लेक्स का प्रयोग घरों व मंदिरों में सजावट हेतु किया जाता है तथा साथ ही इन प्लेक्स का निर्यात देश–विदेश में किया जा रहा है।

अंत टिप्पणी

1. *अग्रवाल श्याम बिहारी–भारतीय चित्रकला का इतिहास (प्राचीन), रूप शिल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ.सं.13*
2. *अग्रवाल श्याम बिहारी–भारतीय चित्रकला का इतिहास (प्राचीन), रूप शिल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996,पृ.सं.47*
3. *नीहार रंजन राय–चित्रकला तथा अन्य कलायें, श्रष्य युग,पृ.सं. 613–616*
4. *एम. के. धवलिकर–मास्टर पिसेज ऑफ इंडियन टेराकोटाज, मुम्बई, 1977,पृ.सं. 39–43*
5. *S.K. Srivastava, Technique & Art of Gupta Terracotta, Chhavi Golden Jubilee, Delhi, 1997, pg. n. 379*
6. *S.K. Srivastava, Technique & Art of Gupta Terracotta, Chhavi Golden Jubilee, Delhi, 1997, pg. n. 379*
7. *Pradosh Gupta, Temple of Terracotta of Bengal, Craftsmen Museum, 1971, pg. n. 40-41*
8. *en.banglapedia.org*
9. *www.dailyudaipur.com*
10. *www.potteryindia.com*
11. *www.molelaterracottaart.com*